International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 71-74

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 71-74
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-11-2021
Accepted: 18-12-2021

शिवानी
शोधकर्त्री, संस्कृत विभाग,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
शिवानी
शोधकर्त्री, संस्कृत विभाग,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

काव्यप्रकाश एवम् उसकी टीकाओं में रस दोष विवेचन

शिवानी

प्रस्तावना

रस काव्य का सार है। रस से ही काव्य आस्वाद्य वह हृदयग्राही होता है। रस के अभाव में काव्य की चारुता केवल कर्णानुरंजक हो सकती है, हृदयावर्जक नहीं। अग्निपुराण में कहा गया है कि वाग्विलास की प्रधानता होने पर भी रस ही काव्य का प्राण-भूत तत्त्व है। [1] आचार्य भरत काव्य के समस्त तत्वों में रस को सर्वोपरि मानते हैं। उनके अनुसार रस के बिना काव्य में किसी भी अर्थ का प्रवर्तन संभव नहीं।[2] आचार्य मम्मट ने काव्य के समस्त प्रयोजनों का मूल 'सद्यःपरनिर्वृति' को बताते हुए कहा है कि काव्यानुशीलन से तुरन्त ही रसास्वादन के फलस्वरुप अन्य सभी विषयों के परिज्ञान से शून्य अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है अर्थात् रस ही काव्य में आस्वादनीय है।[3] साहित्यदर्पणकार काव्य में रस की अनिवार्यता को ज्ञापित करते हुए रसात्मक वाक्य को काव्य-लक्षण के रूप में उपस्थापित करते हैं।[4] उन्होंने रस को लोकोत्तरचमत्कारयुक्त,वेद्यान्तरस्पर्शशून्य तथा ब्रह्मास्वाद के सहोदर के रूप में अभिव्यक्त किया है।[5]

वस्तुतः काव्य-रसास्वाद से सहृदय को असीम एवं अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। रस की व्युत्पत्ति प्रस्तुत करते हुए आचार्य भरत कहते हैं कि जिसका आस्वादन किया जाए, वही रस है[6] तथा आस्वादयोग्य होने से रस के साथ भाव, रसाभास, भावाभास, भाव-संध्यादि का भी ग्रहण किया जाता है।[7] रस की उत्पत्ति विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का स्थायी भावों के साथ संयोग होने पर होती है।[8] रसोत्पादक तत्वों में स्थायी भाव ही सबसे महत्वपूर्ण है, वही विभाव, अनुभाव आदि के द्वारा अभिव्यक्त होता हुआ आस्वाद्यमानता को प्राप्त कर रस कहलाता है।[9] काव्य में रसास्वाद के बाधक तत्वों को आचार्यों ने दोष की संज्ञा प्रदान की है[10] तथा उसके शोभापघातक होने से उनकी हेयता का पर्याप्त निर्देश किया है।[11]

आचार्य भरत काव्य दोषों का काव्य के "घातस्थान" के रूप में उल्लेख करते हैं।[12] काव्यादर्शकार का मत है कि जिस प्रकार सुंदर शरीर पर स्थित श्वेत कुष्ठ का एक चिन्ह उसके संपूर्ण सौंदर्य को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अल्प दोष भी काव्य के काव्यत्व का अपकर्षक होता है।[13] काव्य की आत्मा-रूप में रसादि ध्वनि के प्रतिष्ठापक आचार्य आनंदवर्धन की मान्यता है कि प्रबंध हो या मुक्तक, रसाभिव्यंजन की इच्छा रखने वाले कवि को रस-विरोधी पदार्थों का परिहार करना आवश्यक है।[14] यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रारंभ से ही काव्य दोषों के स्वरूप व उनके परिहार पर विशद-चर्चा होती रही है तथापि आचार्य मम्मट ऐसे प्रथम आचार्य है, जिन्होंने ध्वनिवादी सिद्धांतों के अनुरूप काव्य के मुख्य तत्व के रूप में रस[15] की प्रतिष्ठा कर काव्य-दोषों का स्वरूप सहित व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत कर उनके परित्याग का निर्देश किया है।

आचार्य मम्मट ने काव्य का लक्षण निरूपित करते हुए सर्वप्रथम 'अदोषौ' पद का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है कि उन्हें गुणाधान व अलंकारयुक्तता से पूर्व काव्य का दोष रहित होना अत्यधिक वांछनीय है[16] क्योंकि दोषों के विद्यमान होने पर गुणादि भी महत्वहीन हो जाते हैं।[17] काव्य में दोष का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है कि 'मुख्यार्थ की हति दोष है।' यहां पर मुख्यार्थ का तात्पर्य रस से है क्योंकि काव्य में वही प्रमुख तत्त्व है। हति शब्द का अर्थ है-अपकर्ष। इस प्रकार मुख्यार्थहति का अभिप्राय है-

जिससे रस का अपकर्ष होता है, वह दोष है। रस के वाच्य पर, वाच्य के शब्द एवं अर्थ पर और शब्द के वर्ण-रचना पर आश्रित होने से परम्परया वाच्य, शब्द, अर्थ एवं पदैकदेश के अपघातक तत्व भी काव्यदोष हैं। [18] प्रदीप टीका में हति शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि हति शब्द का अर्थ विनाश नहीं है, यदि हति शब्द का अर्थ 'विनाश' स्वीकार करें, तब यह दोष लक्षण समीचीन नहीं होगा क्योंकि दोष से रस नष्ट नहीं होता अपितु दोष होने पर भी रस का अनुभव होता है। यदि हति का अर्थ अपकर्ष स्वीकार करें तब नीरस काव्य में रस की उत्पत्ति न होने से अपकर्ष भी नहीं होगा तथा हति का अर्थ अनुत्पत्ति स्वीकार करने पर जहां रस की उत्पत्ति अपकृष्ट रूप से होती है वहां यह लक्षण घटित नहीं होगा। अतः हति शब्द का अर्थ वह अपकर्ष है जिसका लक्षण है - 'उद्देश्यप्रतीतिविघात'। उद्देश्य प्रतीति से तात्पर्य है सरस रचना में अविलंबित तथा अनपकृष्ट रूप से रस की प्रतीति और नीरस रचना में अविलंबित रूप से चमत्कारी अर्थ का ज्ञान। सरस और नीरस उभयविध काव्यों में उद्देश्य-प्रतीति का विघात संभव है।[19] अतः काव्य में मुख्य रूप से रका अपकर्ष करने वाले तत्व रस दोष कहे गए हैं। काव्यप्रकाश में आचार्य ने प्रमुख रूप से १३ रस दोषों का विवेचन प्रस्तुत किया है [20], जो इस प्रकार हैं-

1. व्यभिचारी भाव की स्वशब्दवाच्यता

काव्य में निर्वेद इत्यादि 33 व्यभिचारी भावों का व्यभिचारी अथवा निर्वेद आदि शब्दों द्वारा कथन किए जाने पर व्यभिचारी भावों की स्वशब्दवाच्यता नामक रस दोष होता है। विस्तारिका टीका में कहा गया है कि जिस प्रकार लोक में गोपनीय शब्दों का साक्षात् कथन अनुचित होता है उसी प्रकार अनुभाव आदि के साथ व्यंग्य होकर रस-उत्पत्ति में सहायक व्यभिचारी भावों का उनके वाचक पदों द्वारा कथन अनुपयुक्त है। [21] सारबोधिनी के अनुसार व्यभिचारी भावों के स्वशब्दपूर्वक कथन तथा अपने अनुभावों के साथ प्रधानतया व्यक्त होने से भाव-ध्वनि होती है, रस की प्रतीति नहीं। विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव, स्थायी भाव की अभिव्यक्ति में ही रसत्व को प्राप्त करते हैं, स्वशब्दोपादानपूर्वक नहीं तथा रसास्वादन से ही आनंद की प्राप्ति होती है। इस विषय में सहृदय जनों के हृदय ही प्रमाण हैं।[22] अतः व्यभिचारी भावों का उनके वाचक-शब्दों द्वारा कथन रस-प्रतीति का विघातक होने से दोष है, यथा-

> सव्रीडा दयितानने सकरुणामातंगचर्माम्बरे, सत्रासा भुजगे सविस्मयरसा चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि।
> सेर्ष्या जह्नुसुतावलोकनविधौ दीनाकपालोदरे, पार्वत्या नवसंगमप्रणयिनी दृष्टि:शिवायास्तु व:।। [23]

उपर्युक्त पद्य में व्रीडा, करुणादि व्यभिचारी भावों का साक्षात् उनके वाचक शब्दों द्वारा कथन होने से यहां व्यभिचारी भावों की शब्द-वाच्यता नामक दोष है। यदि यहां पर सव्रीडा आदि पदों के स्थान पर 'व्यानम्रा' इत्यादि पदों का प्रयोग किया जाए तो रस की स्फुट रूप से प्रतीति होगी। [24]

2. रस की स्वशब्दवाच्यता

रस का साक्षात् 'रस' शब्द अथवा शृंगार आदि रसों का उनके वाचक पदों द्वारा कथन होने पर यह दोष होता है। वस्तुतः विभाव,अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त होता हुआ स्थायी भाव ही रसास्वाद की अनुभूति कराता है [25], रस का स्व-शब्द से उच्चारण नहीं। संकेत टीका में रस की वाच्यता के प्रसंग में कथन है कि रस की वाच्यता दो प्रकार से संभव है स्वशब्द से कथन होने पर तथा विभावादि के द्वारा प्रतिपादन होने से। यदि रस की वाच्यता स्वशब्दोपादानपूर्वक स्वीकार करें तब विभावादि की प्रतीति होने पर रस की अनुभूति नहीं होगी तथा यह भी ध्यातव्य है कि किसी काव्य में विभावादि के प्रतिपादन का अभाव होने से केवल शृंगार आदि शब्दों का प्रयोग होने पर लेश मात्र भी रसानुभूति नहीं होती। अतः रस की वाच्यता विभावादि के द्वारा ही होती है, स्व-शब्द से नहीं। [26] जैसे-

> तामनङ्जयमङ्लश्रियं किंचिदुच्चभुजमूललोकिताम् ।
> नेत्रयो: कृतवतोऽस्य गोचरे कोऽप्यजायत रसो निरन्तर:।। [27]

उपर्युक्त पद्य में प्रयुक्त 'रस' पद द्वारा रस की सम्यक्तया प्रतीति नहीं होने से यहां रस की स्व-शब्दवाच्यता नामक रस दोष है।

3. स्थायी भाव की स्वशब्दवाच्यता

रत्यादि स्थायी भावों का विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के साथ संयोग होने पर ही रस की अभिव्यक्ति होती है, उनका स्थायी अथवा रत्यादि वाचक पदों द्वारा उल्लेख होने से नहीं। अतः यदि स्थायी भावों का उनके अभिधायक पदों द्वारा कथन हो तो वहां रसप्रतीति नहीं होती अपितु स्थायी भाव की शब्दवाच्यता नामक रस दोष होता है। जैसे- 'ठणत्कारै: श्रुतिगतैरुत्साहस्तस्य कोऽप्यभूत्' [28] यहां पर उत्साह स्थायी भाव का उसके वाचक पद से कथन होने के कारण उपर्युक्त दोष है।

4. अनुभाव की कष्ट कल्पना से अभिव्यक्ति

जिस वाक्य में रस के बोधक अनुभावों का ज्ञान झटिति तथा स्पष्ट रूप से न हो वहां अनुभाव का ज्ञान न होने से रस प्रतीति में बाधा होती है। अतः प्रदीपकार कहते हैं कि अनुभाव की कष्ट कल्पना से अभिप्राय है - पृथक श्लोक आदि के ज्ञान तथा प्रकरण इत्यादि के अनुशीलन से विलंबपूर्वक अनुभाव की अभिव्यक्ति होना।[29]

> कर्पूरधूलिधवलद्युतिपौरधौत दिङ्मण्डले शिशिररोचिषि तस्य यून:।
> लीलाशिरोंऽशुकनिवेशविशेषक्लृप्ति: व्यक्तस्तनोन्नतिरभून्नवयौवना सा ।। [30]

यहां पर आलंबन रूप नायिका और उद्दीपन रूप चंद्रमा श्रृंगार रसानुकूल विभाव अनुभाव में पर्यवसित है, नायिका दर्शन से श्रृंगार के अनुभाव की नायक में उपस्थिति न होने से अनुभाव की कल्पना करनी पड़ती है, जिससे यहां उपरोक्त दोष है।

5. विभाव की कष्ट कल्पना से अभिव्यक्ति

अनुभावों की अभिव्यक्ति में कष्ट कल्पना के समान यदि विभावों का भी स्पष्ट प्रतिपादन न हो और उसकी अभिव्यक्ति की कल्पना करनी पड़े तब वहां विभाव की कष्ट कल्पना अभिव्यक्ति नामक रस दोष होता है।

> परिहरति रतिं मतिं लुनीते स्खलति भृशं परिवर्तते च भूय:।
> इति बत विषमा दशाऽस्य देहं परिभवति प्रसभं किमत्र कुर्म:।। [31]

प्रस्तुत पद्य में रति परिहार आदि अनुभाव श्रृंगार के समान करुण रस में भी समान है तथा विभाव का स्पष्टतया उल्लेख न किये जाने से उसकी कष्टकल्पना होने से दोष है। काव्यप्रदीप के अनुसार यहां पर नायिका रूप श्रृंगार विभाव अभीष्ट है परंतु उसका ग्रहण नहीं किया गया है तथा वह रति परिहार आदि अनुभावों से भी आक्षेपगम्य नहीं है क्योंकि उनकी करुण रस में भी समान रूप से उपस्थिति है। अतः विभाव यत्नपूर्वक कल्पनीय है।[32]

6. प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण

किसी रस की अभिव्यक्ति के समय उसके विरोधी रस के विभाव,अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का वर्णन किए जाने से वर्ण्यमान रस का अपकर्ष होने पर यह दोष होता है।[33] जैसे-

> प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं, प्रिये शुष्यन्त्यंगान्यमृतमिव ते सिंचतु वच:।
> निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं, न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गत: कालहरिण:।। [34]

यहां श्रृंगार रस वर्णन के समय 'न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गत:कालहरिण:' इत्यादि द्वारा शांत रस के विभाव का ग्रहण किए जाने से उपर्युक्त दोष है।

7. रस की पुनः पुनः दीप्ति

काव्य में किसी रस का परिपोष हो जाने के उपरांत भी उसका बार-बार वर्णन किए जाने पर 'रस की पुनः पुनः दीप्ति' नामक दोष होता है। आचार्य आनंदवर्धन कहते हैं कि परिपुष्ट रस का बार-बार उद्दीपन उसका विरोधी होता है।[35] संकेत टीका में कहा गया है कि अपनी सहायक सामग्री से आस्वाद्यमानता को प्राप्त कर चुके रस का पुनः पुनः प्रकाशन मालती माला के समान अपकर्ष को ही प्राप्त करता है।[36] प्रदीपकार के अनुसार रस की पुनः पुनः दीप्ति विषयक दोष अंग रस से ही सम्बद्ध है। काव्य में प्रधान रस का पुनः पुनः उल्लेख आस्वादनीय होता है, जैसे- महाभारत में शांत रस का वर्णन।[37] इस दोष के उदाहरण रूप में आचार्य मम्मट ने कुमारसंभव में रति विलाप के अवसर पर करुण रस की बार-बार परिपुष्टि को उद्धृत किया है।[38]

8. रस का अनवसर में विस्तार

किसी रस का उसके समुचित अवसर के बिना वर्णन किए जाने पर वह आस्वाद्यता को प्राप्त नहीं होता है। जैसे- वेणीसंहार के द्वितीय अंक में युद्ध में भीष्मादि अनेक वीरों के वीर गति को प्राप्त हो जाने पर भानुमती के साथ दुर्योधन का श्रृंगार वर्णन अनुचित है।[39] दीपिका टीका के अनुसार विलास रूप प्रतिमुख संध्यंग के निर्वाह की इच्छा मात्र से आकस्मिक रूप से श्रृंगार का वर्णन शोक मोह का अवसर होने से आस्वाद की उत्कृष्टता को प्राप्त नहीं करता है।[40]

9. अनवसर में रस का विच्छेद

काव्य में रसाभिव्यक्ति का अवसर होने पर सहसा उसका विच्छेद कर देने पर यह रस दोष होता है। जैसे- भवभूति विरचित महावीर चरित के द्वितीय अंक में राम तथा परशुराम के युद्ध-उत्साह में अविच्छिन्न रूप से प्रवृत्त होने पर राम की 'कंकणमोचनाय गच्छामि' यह उक्ति वीर रस का विच्छेद करती है।[41] दीपिकाकार के मत में उस प्रकार वीर रस के वर्णन के अवसर पर राम सदृश वीर का उक्त प्रकार से कथन अनुचित है। [42]

10. अप्रधान का विस्तार

काव्य में मुख्य नायक आदि की अपेक्षा अप्रधान नायक आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन रस दोष कहलाता है। जैसे- 'हयग्रीव वध 'नाटक में हयग्रीव के प्रतिनायक होने पर भी उसका नायक की अपेक्षा अत्यधिक विस्तार से वर्णन किया जाना।[43] इस संदर्भ में प्रदीपकार लिखते हैं कि यद्यपि हयग्रीव-वध में प्रतिनायक का वर्णन नायक के ही उत्कर्ष में पर्यवसित होता है तथापि प्रतिनायक का अत्यधिक वर्णन किए जाने से वह नायक के उत्कर्ष का तिरोधायक है और इसी कारण से दोषत्व को प्राप्त होता है।[44]

11. प्रधान का अननुसंधान

जहां कवि अप्रधान के विस्तार में प्रधान को विस्मृत-सा कर देता है, वहां यह दोष होता है। काव्यप्रकाशकार के अनुसार 'रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक में बाभ्रव्य के आगमन पर मुख्य नायिका सागरिका की विस्मृति' इस दोष का उदाहरण है।[45] विस्तारिका टीका के अनुसार अंगी भाव का अपरामर्श प्रकारांतर से रस को स्थगित कर देता है। अतएव रत्नावली के चतुर्थ अंक में सागरिका की विस्मृति से नाटिका का प्रतिपाद्य श्रृंगार रस प्राय: विच्छिन्न हो जाता है।[46]

12. प्रकृति विपर्यय

काव्य में नायक-नायिकादि पात्रों का उनके स्वभाव के विपरीत वर्णन किए जाने पर यह रस दोष होता है। अतः काव्य में पात्रों का उनके स्वभाव, देश, काल, आयु, जाति तथा तदनुसार ही वेश, व्यवहार आदि का वर्णन होना चाहिए।[47]

13.अनङ (अप्रधान) का कथन

जो रस का उपकारक नहीं है, उसका वर्णन भी दोष होता है। जैसे- 'कर्पूरमंजरी सट्टक में नायिका के द्वारा वसंत वर्णन छोड़कर बंदी (चारण) के द्वारा वर्णित राजा की प्रशंसा करना। [48]

उपसंहार:-

अतः कहा जा सकता है कि काव्यप्रकाश के टीकाकारों ने आचार्य मम्मट द्वारा वर्णित रस दोष के स्वरूप का सभेद विस्तृत विवेचन किया है। जिससे हमें मम्मट के रस दोष की अवधारणा को समझने में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। यथा- प्रदीप टीका में उल्लिखित हति शब्द के अभिप्राय 'उद्देश्य प्रतीतिविघात' (सरस रचना में अविलंबित तथा अनपकृष्ट रूप से रस की अप्रतीति तथा नीरस रचना में अविलंबित रूप से चमत्कारी अर्थ का ज्ञान न होना) के द्वारा आचार्य कृत काव्य लक्षण में 'अदोषौ' पद का अभिप्राय स्पष्ट होता है कि काव्य में दोषों का अवश्य ही अभाव होना चाहिए जिसका तात्पर्य उत्तम काव्य में मुख्य रूप से रस दोष, मध्यम काव्य में वाच्य दोष तथा चित्र काव्य में शब्दार्थ दोष की हेयता से है। उपर्युक्त वर्णित दोष साक्षात काव्यात्मभूत रस का

अपकर्ष करते हैं, अत: काव्य के मुख्य प्रयोजन रस की ही प्रतीति में विघ्न समुपस्थित करने के कारण काव्य में ऐसे दोष सर्वथा त्याज्य है।

संदर्भ सूची

1. वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् । अग्निपुराण ३३७/३३
2. नहि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते। नाट्यशास्त्र अ०६
3. सकलप्रयोजन मौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्.....। काव्यप्रकाश पृ० ८
4. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । साहित्यदर्पण पृ० १७
5. सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ॥ साहित्यदर्पण पृ- ८०
6. रस इति कः पदार्थः ? आस्वाद्यत्वात् । नाट्यशास्त्र पृ० १८९
7. अत्र रसशब्देन रस्यते आस्वाद्यते इति व्युत्पत्त्या भावादिरप्युपसंगृह्यते । काव्यप्रकाश बालबोधिनी पृ०२६३
8. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति: । नाट्यशास्त्र पृ० १८२
9. व्यक्तः स तैर्विभावाद्यै: स्थायीभावो रसः स्मृतः । काव्यप्रकाश पृ० ११९
10. दोषास्तस्यापकर्षकाः । साहित्यदर्पण पृ० २०
11. हेयाः काव्ये कवीन्द्रैर्ये तानेवादौ प्रचक्ष्महे । सरस्वतीकंठाभरण १/३
12. एतानि यथास्थूलं घातस्थानानि काव्यस्य । नाट्यशास्त्र पृ० २७/३१
13. तदल्पमपि नोपेक्ष्य काव्ये दुष्टं कथञ्चन ।
स्याद्व्रपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥ काव्यादर्श १/७
14. प्रबन्धे मुक्तके वापि रसादीन् बन्धुमिच्छता ।
यत्नः कार्यः सुमतिना परिहारे विरोधिनाम् ॥ ध्वन्यालोक ३/१७
15. रसश्च मुख्यः । काव्यप्रकाश पृ० २७९
16. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि । काव्यप्रकाश पृ० १८
17. सति दोषे गुणादेरप्यकिंचित्करत्वात् । काव्यप्रदीप पृ० १६८
18. मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः ।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः ॥ काव्यप्रकाश ७/४९
19. हतिर्विनाशः । न च दोषेण रसो नश्यते .....उद्देश्यप्रतीतिविघातलक्षणोऽपकर्षो हतिशब्दार्थः । उद्देश्या च प्रतीति रसवत्यविलम्बितानपकृष्ट रसविषया च । नीरसे त्वविलम्बिता चमत्कारीणी चार्थविषया । काव्यप्रदीप पृ० १६९
20. व्यभिचारिरस स्थायिभावानां शब्दवाच्यता.....रसे दोषाः स्युरीदृशाः ॥ काव्यप्रकाश ७/ ६०, ६१, ६२
21. लोके यथा गोप्यानां.....स्पष्टप्रकाशनेत्यर्थः । विस्तारिका ७/६०/१
22. व्यभिचारिणां स्वशब्दानुपादाने.....सहृदयहृदयमेवेति ध्येयम् । सारबोधिनी ७/६०/१
23. काव्यप्रकाश ७/३२१
24. व्यानम्रा दयितानने मुकुलिता.....कपालोदरे । काव्यप्रकाश पृ० ३८३
25. काव्यप्रकाश ४/२८
26. वाच्यत्वं हि स्वशब्द.....एवं द्वितीय एव पक्षो न्याय्यः । संकेत ७/६०/२
27. काव्यप्रकाश ७/३२२
28. काव्यप्रकाश ७/३२४
29. कष्टकल्पना पृथक्श्लोकाद्यसंधेयप्रकरणादिपर्यालोचनया विलम्बेन व्यक्तिः । प्रदीप ७/६०/४
30. काव्यप्रकाश ७/३२५
31. काव्यप्रकाश ७/३२६
32. अत्र कामिनीरूपः.....तेषां करुणादावपि संभवादिति कष्टेन कल्पनीयः । प्रदीप ७/६०/५
33. प्रस्तुतरसापेक्षया प्रतिकूलो विरोधी विभावादीनां विभावानुभावाव्यभिचारिणां ग्रहो यत्र स...। काव्यादर्श ७/६१/६
34. काव्यप्रकाश ७/३२७
35. परिपोषं गतस्यापि पौनः पुन्येन दीपनम् ।
रसस्य स्याद्विरोधाय .....। ध्वन्यालोक ३/१९
36. उपभुक्तो हि रसः स्वसामग्रीलब्धपरिपोषः पुनः पुनः परामर्शेन मालतीमालेव म्लायति । सङ्केत ७/६१/७
37. पुनः पुनर्दीप्तिरङ्गरसादिविषया दोषः । अङ्गिनस्तु सा महाभारतादौ.....। प्रदीप ७/६१/७
38. काव्यप्रकाश पृ० ३८७
39. वही
40. तत्र हि विलासरूपप्रतिमुख.....नास्वादप्रकर्षावहम् । दीपिका ७/६१/८
41. काव्यप्रकाश पृ० ३८८
42. नहि तादृशावसरे तादृशवीरस्यैवमुक्तिर्युज्यते.....। दीपिका ७/६१/९
43. काव्यप्रकाश पृ० ३८८
44. यद्यपि प्रतिनायकवर्णनं नायकस्यैवोत्कर्षे.....दोषपदवीमवतरति । प्रदीप ७/६१/१०
45. काव्यप्रकाश पृ० ३८८
46. अङ्गिनो भावस्याननुसन्धानं प्रकरणान्तरेण स्थगनम् ।.....विच्छिन्नप्रायः स्यादिति । विस्तारिका ७/६२/११
47. काव्यप्रकाश पृ० ३८९-३९०
48. काव्यप्रकाश पृ० ३९१